ज्ञान तत्व अंक 154

(क) लेख, कर्त्तव्य और अधिकार ।

(ख) कृष्ण कुमार जी खन्ना के आन्दोलन पर प्रश्न और मेरा विस्तृत उत्तर।

(ग) श्री ईश्वर दयाल जी राजगीर नालन्दा बिहार, नाथू राम विनायक गोडसे के संबंध में प्रश्न और मेरा विस्तृत उत्तर ।

(घ) श्री के0जी0बालकृष्ण पिल्लै, गीता भवन, पेरूरकटा, तिरूअन्न्तपुरम् केरल के प्रश्न और मेरा उत्तर ।

(च) अपनो से अपनी बात ।

(क) कर्त्तव्य और अधिकार

कर्त्तव्य और अधिकार एक दूसरे के पूरक होते हैं। किसी व्यक्ति के कर्त्तव्य ही किसी दूसरे व्यक्ति के अधिकारों की पूर्ति करते हैं। यदि डाक्टर अपना कर्त्तव्य पूरा न करें तो मरीज के अधिकारों की पूर्ति नहीं हो सकती। शिक्षक यदि ठीक से न पढ़ावे तो विद्यार्थी के अधिकार अधुरे ही रह जायेंगे। समाज के प्रत्येक सदस्य के अधिकारों की पूर्ति किसी अन्य के कर्त्तव्य से ही संभव है अन्यथा नहीं।

व्यक्ति कर्त्तव्य तीन आधारों पर कर सकता है **(1)**स्वप्रेरणा से **(2)**समाज व्यवस्था के अन्तर्गत**(3)**कानून के भय से। पहली स्थिति आदर्श होती है जो बहुत कम देखने को मिलती है। दूसरी स्थिति सामान्य होती है जो समाज मे निन्यान्नवे प्रतिशत तक मिलती है। तीसरी स्थिति भी कम ही दिखाई देती है जब कोई व्यक्ति किसी कानून के भय से अपना कर्त्तव्य पूरा करे। तीसरी स्थिति निकृष्ट और खतरनाक होती है, क्योंकि कानून के भय से पूरा किये जाने वाले कर्त्तव्य में गुणवत्ता का भी अभाव होता और भ्रष्टाचार का छल–कपट, दॉवपेंच भी मिला हुआ रहता है। ऐसा कर्त्तव्य सिर्फ दूसरे के अधिकारों की पूर्ति की खानापूर्ति तक ही सीमित रहता है, संतुष्टि तक नहीं।

सस्थाऍ हमेशा कर्त्तव्य किया करती हैं, अधिकारों में उनकी भूमिका नगण्य होती है, जबकि संगठनों की भूमिका अधिकारों तक सीमित होती है, कर्त्तव्य की प्रेरणा उसमें नगण्य होती है। संगठन प्रायः अपने अधिकारों की सुरक्षा के नाम पर बनते हैं, किन्तु दूसरों के अधिकारों में छीना–झपटी में जल्दी ही लग जाते हैं। संस्था और संगठन का भेद करना कोई कठिन कार्य नहीं है, क्योंकि संस्थाऍ कभी अपने अधिकारों के लिए कोई प्रयत्न नहीं करती और संगठन अधिकारों के लिए संघर्ष छोड़कर कोई और काम करता ही नहीं। कुछ संगठन भी स्वयं को संस्था के रूप में बनाये रखने की कोशिश करते हैं, किन्तु शीघ्र ही उनका भेद खुल जाता है।

अधिकार चार प्रकार के होते हैं। **(1)**व्यक्तिगत**(2)**पारिवारिक **(3)**सामाजिक**(4)**संवैधानिक। चारों प्रकार के अधिकारों का स्वरूप अलग–अलग होता

है और इनकी सीमाएँ भी अलग–अलग होती हैं। इनकी पहचान और सीमाएँ प्रायः अस्पष्ट होने से भ्रम भी फैलता है और अतिक्रमण भी होता रहता है। व्यक्तिगत अधिकारों को मौलिक अधिकार कहा जाता है। ये पूरी तरह प्राकृतिक अधिकार होते हैं जिनमें राज्य सहित कोई भी अन्य ईकाई किसी भी स्थिति में तब तक कोई कटौती नहीं कर सकती जब तक वह व्यक्ति किसी अन्य के वैसे ही अधिकारों का उल्लंधन न करें। संविधान बनाने वालों ने न तो इस परिभाषा को कभी ठीक से समझा न ही इसकी भावना को। भारतीय संविधान में बिना सोचे–समझे ही अनेक दूसरे प्रकार के अधिकारों का कूड़ा –कचड़ा तो भर दिया गया और स्व निर्णय और सम्पत्ति जैसे आवश्यक अधिकार को बाहर कर दिया गया। रोजगार और शिक्षा की स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का मूल अधिकार है, किन्तु राज्य द्वारा रोजगार और शिक्षा में सहायता की गारण्टी व्यक्ति का संवैधानिक अधिकार तो हो सकता है, किन्तु मूल अधिकार नहीं। बहुत से लोग शिक्षा और रोजगार को मूल अधिकार में शामिल करने की मॉग करते हैं और राज्य से जुड़ी इकाईयॉ भी उसे पूरा करने का आश्वासन देतीं हैं। इन दोनों को यह समझना चाहिए कि प्राकृतिक अधिकार न संविधान दे सकता है न ही ले सकता है और न ही संशोधित कर सकता है। प्राकृतिक या मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी मात्र राज्य दे सकता है। दुर्भाग्य ही है कि सुरक्षा की गारण्टी देने तक सीमित संविधान स्वयं ही अपने को दाता मूल अधिकार तक का घोषित कर देता है।

पारिवारिक और सामाजिक अधिकारों के मामले में भी ऐसा ही भ्रम बना हुआ है। किसी व्यक्ति के किसी भी मामले में परिवार या समाज की दण्ड देने की सीमाएँ हैं। किसी भी व्यक्ति को दण्डस्वरूप परिवार या समाज उसका बहिष्कार तक ही कर सकता है, किन्तु मारपीट, जेल, या हत्या नहीं कर सकता। आज कल परिवार या समाज धडल्ले से यह सब कर रहे हैं। विवाह या तलाक नितान्त व्यक्तिगत विषय हैं। परिवार या समाज किसी अनियंत्रित विवाह को अस्वीकार कर सकते हैं, उनको परिवार से निकाल सकते हैं या उसे समाज से बहिष्कृत भी कर सकते हैं, किन्तु मारपीट या हत्या नहीं कर सकते। प्राचीन समय में भी परिवार या समाज को यह अधिकार नहीं था। आज स्थिति यह है कि राज्य समाज को उसके बहिष्कार के अधिकार से भी वंचित कर रहा है तो समाज ऐसे मामलों में हत्या तक बढ़ जा रहा है । सारी सीमाएँ टूट रही हैं। इसका मुख्य कारण व्यक्ति ,परिवार, समाज और राज्य की अस्पष्ट व्याख्या का होना भी है और इनके अधिकारों की सीमाएँ भी अस्पष्ट होना है। इस सारी व्यवस्था को दूषित करने में राज्य की भूमिका सर्वाधिक रही है। उसने ही इन सबकी परिभाषाओं और सीमाओं को तोड़ने की पहल की है।

राज्य की भूमिका समाज को न्याय और सुरक्षा तक सीमित है। इसके बाद खाली होने पर वह समाज की इच्छा से अन्य कार्यो में भी सहायक हो सकता है, किन्तु राज्य ने इन सीमाओं को कभी परवाह ही नहीं की। राज्य ने सारी सीमाओं को तोड़ते हुए स्वयं को समाज का अभिरक्षक घोषित कर दिया। राज्य के पास ऐसी क्या मजबूत स्थिति थी कि उसने समाज को सभी अधिकार देने का ठेका ले

लिया। घर में नहीं दाने, अम्मा चली भुनाने। सुरक्षा और न्याय की तो गारण्टी दे नहीं सके, किन्तु छुआछुत, शराब ,गांजा, वैश्यावृत्ति आदि रोकने तक की घोषणा करने लगे। अब तो हाल यहॉ तक हो गया है कि राज्य कुछ नासमझ दलालों के फेर में पड़कर सर्वशिक्षा और रोजगार तक की बड़ी–बड़ी घोषणाएँ करने में व्यस्त हैं। कौन नहीं जानता कि वर्तमान राज्य व्यवस्था सिर्फ श्रम को रोजगार उपलब्ध कराने में सफल नहीं हो पाई है, किन्तु दावा करती है शिक्षितों को भी रोजगार देने का। ये व्यवस्था भ्रष्टाचार वृद्धि को तो रोकने में चारों खाने चित्त दिख रही है और दावा करने में तो बस इसके बराबरी का कोई है ही नहीं।

इस समय समाज में दो स्पष्ट वर्ग बन गये हैं। एक में हैं सर्वाधिकार सम्पन्न राजनेता और दूसरी में है कर्त्तव्य प्रधान समाज। दोनों की बिल्कुल पृथक–पृथक जाति बन गयी है। दोनों की अलग–अलग पहचान भी है और प्रवृत्ति भी। राजनीतिज्ञों की जाति का कोई भी सदस्य राजनीतिक मामलों में सिर्फ अधिकार की बात करता है, कर्त्तव्य की तो कभी करता ही नहीं दूसरी ओर वही राजनेता जब दूसरी जाति की चर्चा करता है तब सिर्फ उसे कर्त्तव्य की ही प्रेरणा देता रहता है। संविधान राज्य के अधिकतम अधिकार और समाज के न्यूनतम अधिकारों की सीमाएँ निश्चित करने वाला दस्तावेज होता है। संसद ने वोट देने का अधिकार छोड़कर समाज के सारे अधिकार अपने पास समेट लिए। इतने पर भी जब इन राजनेताओं का पेट नहीं भरा तो इन्होंने आपात्काल में संविधान में संशोधन करके समाज के लिए मौलिक कर्त्तव्य की एक नई धारा और लाद दी। हमें क्या करना चाहिए यह बताना न राज्य का विषय है न संविधान का। यह विषय पूरी तरह समाज का है। राज्य या संविधान तो सिर्फ इतना ही बता सकते हैं कि व्यक्ति परिवार या समाज कौन–कौन से कार्य नहीं कर सकता है। राज्य ऐसे प्रतिबंधित कार्यो को रोकने के प्रावधान बना सकता है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह भी है कि किसी ने भी आज तक संविधान में उक्त अध्याय जोड़ने पर कोई प्रश्न खड़ा नहीं किया। निन्यान्नवे प्रतिशत समाज तो प्रश्न खड़ा कर ही नहीं सकता, क्योंकि उसकी तो भूमिका ही सिर्फ कर्त्तव्य करने तक सीमित है। एक प्रतिशत राजनेता इसलिए प्रश्न खड़ा नहीं कर सके, क्योंकि उनके अधिकारों में इस संविधान संशोधन से वृद्धि हो रही है। बीच में कोई तीसरी जाति होती ही नहीं है।

अभी–अभी मैंने अर्जुन सिंह जी को अपनी नेहरू परिवार के प्रति वफादारी की विवेचना करते सुना। दो–चार दिन पूर्व ही यू0पी0 के अभिलेख दास के कांग्रेस छोड़कर बसपा में जाते ही कांग्रेस ने उन्हें पुराना भ्रष्ट घोषित करके सम्पत्ति जॉच की मॉग कर दी। शिव सेना से अलग होकर नया दल बनाते ही जय भगवान जी गोयल ने बाल ठाकरे पर पाकिस्तानी एजेण्ट का आरोप जड़ दिया। समझ में नहीं आता कि इस बिरादरी के सभी सदस्यों के आचरण में समानता क्यों है? इस समय समाज की किसी भी अन्य जाति की अपेक्षा इस राजनैतिक बिरादरी में निम्न दो बातें बराबर पाई जा रही है।

(1)एक दूसरे के प्रति षडयंत्र की सीमा तक छद्म व्यवहार तथा गुप्त योजनाएँ **(2)**समाज को बर्बादी की सीमा तक कर्त्तव्य करने की आदर्श प्रेरणा, किन्तु स्वयं अपने व्यवहार में निर्लज्जता की सीमा तक अधिकार संघर्ष।

इस पूरी जाति के प्रत्येक सदस्य को पता है कि समाज में उनकी साख लगातार गिरकर एक अलग पहचान बन रही है, किन्तु ये इसलिए चिन्तित नहीं, क्योंकि इस जाति की जगह न कोई दूसरी जाति उभर रही है न उभर सकती है। जब तक यह संविधान है और जब तक यह लोकतंत्र है तब तक इस बिरादी को कोई संकट नहीं, क्योंकि संविधान ने ही तो विभाजन करके भैंस का थन इस बिरादरी को सुपुर्द कर दिया है और मुँह शेष समाज के जिम्मे। अब निन्यान्नवे प्रतिशत समाज अपना पूरा–पूरा कर्त्तव्य करते रहे जिससे एक प्रतिशत राजनीतिज्ञों के अधिकारों में कोई कमी न हो।

अधिकार और कर्त्तव्य का ऐसा जातीय विभाजन समाज के लिए चिन्ता का विषय है। यदि कोई इसे तोड़ने के नाम पर सामने आता भी है तो वह उसी दूसरे समूह की जाति के गुण ग्रहण करे उसमें शामिल हो जाता है। अब तो सिर्फ एक ही मार्ग दिखता है कि ज्ञान यज्ञ की दिशा को ज्यादा से ज्यादा मजबूत किया जा सके जिससे प्रत्येक व्यक्ति के मानस में कर्त्तव्य और अधिकार का एक संतुलन स्थापित हो और कर्त्तव्य और अधिकार के रूप में स्थापित जातीय समीकरण टूट सके।

कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न (ख) – आपने कृष्ण कुमार जी खन्ना के आन्दोलन का उत्तर दिया। आप आन्दोलन में कितना साथ दिये? आन्दोलन का आगे क्या हुआ?

उत्तर – खन्ना जी ने आन्दोलन के जो मुद्दे उठाये वे समस्याओं के कारण न होकर मूल समस्या के परिणाम मात्र हैं। परिणामों के विरूद्ध आन्दोलन सामान्य लोगों को तो करना चाहिए, किन्तु विशेष लोगों को अपनी ऊर्जा बचाकर किसी निश्चित परिणाम मूलक आन्दोलन की प्रतीक्षा करनी चाहिए। खन्ना जी को दिल्ली आकर ऐसे मूद्दे को राष्ट्रीय पहचान देने की अपेक्षा मेरठ तक सीमित रखना अधिक उपयुक्त होता ।

एक ऐतिहासिक संदर्भ पर विचार करिए। राम रावण युद्ध में राम के कई घातक आक्रमणों के बाद भी रावण पुनःजी उठता है, क्योंकि रावण की नाभि में अमृत है जो राम को पता नहीं था और विभीषण ने बाद में बताया जिसके परिणाम स्वरूप रावण को मारा जा सका। वर्तमान समय में भारतीय राजनीति के केन्द्र में

भारतीय संविधान रूपी अमृत कलश है जो वर्तमान राजनेताओं को सभी प्रकार के अधिकार भी सौपता है और सुरक्षा भी देता है। मुझे यह पता है कि रावण की नाभि में अमृत है। मैं राम रूपी खन्ना जी को बताता हूँ कि वे अमृत कलश पर आक्रमण केन्द्रित करें। खन्ना जी अभी उस दिशा में सक्रिय नहीं हैं तो मैं क्या करूँ? मैंने बावन वर्षो तक ज्ञान यज्ञ किया है तब कुछ निष्कर्ष निकला है। खन्ना जी या आप अन्य साथी ज्ञान यज्ञ रूपी समाधान मार्ग की शुरूआत करें तो स्वयं ही मार्ग दिखने लगेगा।

खन्ना जी कोई साधारण व्यक्तित्व नहीं हैं। उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति इस उम्र में भी सम्मान योग्य है। वे हमारी निर्णायक परामर्श देने वाली टीम के सदस्य हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि संसद को अपना वेतन भत्ता बढ़ाने का अधिकार प्राप्त है। संसद इस अधिकार का दुरूपयोग कर रही है। खन्ना जी का आन्दोलन ऐसे दुरूपयोग के विरूद्ध है। मेरी सोच यह है कि संसद को अपने वेतन स्वयं ही बढ़ाने का अधिकार गलत है। यह तो सामान्य व्यक्ति भी समझ सकता है कि राजनेताओं को ऐसा अधिकार होना बिल्कुल गलत है। फिर ऐसे अधिकार के विरूद्ध आन्दोलन न करके दुरूपयोग के विरूद्ध आन्दोलन करने से समाज में यह संदेश जाता है कि हम राजनेताओं को सुधारने के पक्षधर तो है, किन्तु अधिकारों में कटौती के लिए चुप हैं। मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि जब तक संसद को अपने वेतन भत्ते बढ़ाने के अधिकारों पर आक्रमण नहीं होगा तब तक कोई परिणाम नहीं निकलेगा।

फिर भी खन्ना जी का प्रयत्न उनकी क्षमता के अनुरूप भले ही न हो, किन्तु दिशा गलत नहीं है। इसलिए मैंने उनका समर्थन मात्र किया, सहयोग नहीं कर सका। आन्दोलन की दिशा में ठाकुर दास जी बंग की पहल अधिक सुविचारित, योजनाबद्ध और ठोस है। मैंने तो मन बनाया है कि बंग जी के नेतृत्व में जो योजना बन रही है उसमें अपनी अधिकतम शक्ति लगा सकूँ। मैं तो अपने अन्य मित्रों को भी सलाह देता हूँ कि आप अगले सम्मेलन में बंग जी के साथ बैठकर उस टीम के हाथ मजबूत करें।

(ग) श्री ईश्वर दयाल जी, राजगीर, नालन्दा, बिहार,

प्रश्न — नाथू राम विनायक गोडसे के संबंध में आपके विचार (ज्ञान तत्व–145) लोगों में विशेषतः गॉधी जन में खलबली तो पैदा कर सकते हैं, आपको सस्ती लोकप्रियता या लीक से हटकर सोचने का वहम पैदा कर सकते हैं, परन्तु सत्य के दर्शन नहीं करा सकते। ''गोडसे के मन में निःस्वार्थ तो क्या, स्वार्थयुक्त भी देशभक्ति की भावना'' (पृ016)का लेशमात्र न था। क्या आप एक भी उदाहरण गोडसे के जीवन से दे सकते हैं, जिससे उसकी देश या राष्ट्रपति की भावना का परिचय मिलता हो? सचमुच गोडसे की भावना पर कभी कोई उंगली नहीं उठाई जा सकती है' (तदैव) , परन्तु उस भावना का संबंध 'राष्ट्र' से बिल्कुल नहीं था, उसका संबधं केवल और केवल 'हिन्दू राज्य' से था, आपने कहीं लिखा भी है, और चर्चा में तो प्रायः दुहराते हैं कि गोडसे नेहरू की

जगह भारत का प्रधानमंत्री होता तो इस देश का इतिहास कुछ और ही होता। स्वतंत्रता की लड़ाई में पूरा नेहरू परिवार जेल में था। आपको इसका भी खुलासा करना चाहिए कि गोडसे देश की आजादी के लिए कितने मिनट तक जेल गया या आजादी की लड़ाई में उसका योगदान क्या था। प्रकट या गुप्त। गोडसे के प्रधानमंत्री बनने पर इतिहास सचमुच कुछ और होता – देश सीधे 16वीं शताब्दी में पहुॅच जाता। ' गोडसे किसी विचारधारा का शिकार नहीं हुआ (तदैव) वस्तुतः वह पुणे की मृत पेशवाशाही की लाश का बजबजाता कीड़ा था, जिसके पास न तो कोई चिन्तन था, न कोई दृष्टि। बस हिन्दू राज्य, या पेशवाशाही की पुनर्स्थापना का लालबुझक्कड़ी सपना था।

यह बात भी काबिले –गौर है कि जिस पाकिस्तान की अभिकल्पना को मुहम्मद अली जिन्ना ने 'एक असंभव सुन्दर सपना' कहकर नकार दिया था उसे इन्हीं 'हिन्दु राज्य या पेशवाशाहों ने नैतिक और सैद्धांतिक समर्थन दिया था। हिन्दू राज्य या पेशवाशाही की स्थापना में इन कुढ़मग्गजों को गॉधी साफ–साफ बाधक नजर आ रहे थे। गॉधी पर इन पेशवाशाहों द्वारा कम से कम छः हमले तो जरूर हुए थे और उनमें से तीन में तो गोडसे प्रत्यक्षतः शामिल था, शेष के बारे में विश्वास पूर्वक नहीं कह सकता। गोडसे जब पहली बार छुरा लेकर गॉधी पर हमला करने गया था, तब उसके बयान में दर्शाये गये बाईस के बाईस बिन्दुओं में से एक भी कारण उपस्थित नहीं था। क्या आप या कोई और इस पर प्रकाश डालना चाहेंगे कि '' निस्वार्थ देशभक्त'' गोडसे गॉधी को छुरा मारकर देश का कौन सा हित साधना चाहता था? शायद आप इस पर भी प्रकाश डालना पसंद करें कि गोडसे और उसके पेशवाशाही साथियों ने कितने अंग्रेजों और उनके गुर्गो को यमलोक पहुॅचाया, या उन पर हमला करने का साहस भी दिखाया? कायरता सदा अपने नख–दन्त' साफ्ट टारगेट पर ही आजमाती है।

मोहम्मद शफी आजाद भाई को 'म्लेच्छ ' और 'यवन' शब्दों से दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है (ज्ञान तत्व–144) उन्हें पता होना चाहिए कि ये दोनों शब्द भारत में इस्लाम के उदय से हजारों वर्ष पूर्व से प्रचलित थे और ''हिन्दू'' शब्द की भॉति भौगोलिक इकाई से संबंध थे। भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों में यवनों के लिए प्रशंसा के भाव भी मिलते हैं और यवनों द्वारा प्रदत्त कुछ तकनीकि शब्द अभी भी भारतीय ज्योतिष शास्त्र में प्रयुक्त होते हैं। अब यदि प्राचीन पारसी कोषों में 'हिन्दू' शब्द के अर्थ 'चोर' 'काला' 'गुलाम 'दास ' आदि दर्ज है तो कितने किन्दू इसके लिए दुःखी हो रहे हैं या विरोध दर्ज करा रहे हैं? शफी भाई और उनके सहधर्मियों को सहिष्णुता और स्वीकार्यता का यह पाठ सीखना चाहिए। THE OTHER IS WRONG की नीति हमें अधिक दूर तक नहीं ले जा सकती।

उत्तर – आपने गोडसे के विषय में जो कुछ लिखा उससे मैं सहमत रहा हूॅ। मैंने पूर्व में भी कई बार ज्ञानतत्व में लिखा है कि गोडसे एक कायर व्यक्ति था या गोडसे

ने कभी स्वतंत्रता संघर्ष में भाग नहीं किया या गोडसे ने गॉधी की हत्या करके एक ऐसी भूल की जिसका परिणाम आज तक हम भुगत रहे हैं आदि–आदि। गोडसे का कृत्य न कभी प्रशंसनीय था न रहेगा। इसलिए गोडसे के कार्य में देशभक्ति देशप्रेम के प्रयत्न का कोई समावेश हो ही नहीं सकता। पण्डित नेहरू ने अपने जीवन काल में अनेक अच्छे कार्य किये हैं। वे स्वतंत्रता के संघर्ष में भी शामिल रहे यह सब कुछ सही है।

विचारणीय बिन्दु कुछ और है। एक पिता किसी धूर्त के चक्कर में पड़कर अपने ही बेटे की गर्दन काटकर देवी पर चढ़ा देता है। उस पिता का यह कार्य कानूनी भाषा में अपराध है और सामाजिक भाषा में भूल। आप इस बात पर विचार करिए कि गोडसे स्वयं Motivator था या motivated। दोनों के कृत्य एक समान नहीं माने जा सकते। मोटीवेटेड गल्ती करता है और मोटिवेटर गल्ती कराता है। आज सम्पूर्ण विश्व में अनेक मुस्लिम आतंकवादी धर्म के नाम पर अपनी जान दे रहे हैं और दूसरों की ले रहे हैं। ये सब लोग किसी षडयंत्र मस्तिष्क द्वारा या किसी आतंकवादी विचारधारा द्वारा संचालित होते हैं। वे लोग स्वयं संचालित नहीं है। हमें यह सोचना होगा कि गोडसे ने जो कुछ राष्ट्रभक्ति के नाम पर किया वैसा तो आज धर्मभक्ति के नाम पर भी हो रहा है। तय करना होगा कि अधिक समाज विरोधी संचालक को माना जाए या संचालित को। गांधी हत्या में संचालन किसी संकीर्ण विचारधारा का था न कि गोडसे का। वह तो एक प्रकार की जीवित मशीन के समान काम कर रहा था।

जो स्थिति गोडसे की थी वह नेहरू की नहीं थी। नेहरू मोटिवेटेड न होकर स्वयं में मोटिवेटर थे। गोडसे अपने मोटिवेटर के प्रति पूर्ण ईमानदार था। उसे अपने कार्य में ही सम्पूर्ण देशभक्ति दिखलाई दे रही थी। नेहरू ने स्वतंत्रता के बाद देश को मुमराह किया उसमें नेहरू का स्वार्थ अधिक था और त्याग शून्य। नेहरू कभी गॉधी विचारधारा के प्रति समर्पित नहीं रहे। गॉधी की हत्या होते ही नेहरू जी ने जिस तरह गॉधी जी के लोक स्वराज्य ग्राम स्वराज्य के साथ धोखा किया वह किसी भी तरह छोटा अपराध नहीं है। नेहरू जी ने योजना पूर्वक विनोबा जी को गुमराह किया जो आज तक जारी है। आज भी सर्वोदय नेहरू विचारधारा से उबर नहीं पाया है। आज तक गांधी के बाद भारत में कोई दूसरा गॉधी नहीं बन पाया। सारी दुनिया में गॉधी स्थापित हो रहे हैं, किन्तु भारत में विस्थापित इसलिए हो रहे हैं कि यहॉ गॉधी के नाम पर नकली गॉधीवाद को स्थापित किया जा रहा है। गॉधी की अवधारणा न्यूनतम शासन की है और यदि राज्य ऐसा न करे तो अहिंसक संघर्ष की है, जबकि नेहरू की भूमिका अधिकतम शासन की है जिसके लिए अहिंसा के नाम पर कायरता का विस्तार आवश्यक है। वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्या अहिंसक कायरता और हिंसक संघर्ष के दो विपरीत विचारों के बीच प्रतिस्पर्धा है जिसका एक पक्ष गॉधीवादियों का नेहरू मॉडल के साथ जुड़ा है तो दूसरा नक्सलवादियों तथा संघ परिवार के साथ। बीच में गुलाम समाज गुलामी के दो ध्रुवों के बीच तमाशा देख रहा है।

गॉधी नेहरू पटेल जय प्रकाश आदि स्वयं संचालक रहे हैं और विनोबा जी या गोडसे आदि संचालक न होकर संचालित थे। विचार यह करना है कि संचालित द्वारा पूरी ईमानदारी से सचालक से संचालक के पक्ष में किये गये गलत कार्य में संचालक का कितना दोष माना जाए और संचालित का कितना। मैंने तो अपनी विवेचना में मात्र इतना ही लिखा है कि यदि नेहरू की अपेक्षा गोडसे सरीखा ईमानदार व्यक्ति गॉधी जी द्वारा संचालित हुआ होता तो आज देश की ऐसी दुर्गति नहीं होती जैसी आज है। मैंने अपने सम्पूर्ण लेख में गोडसे और नेहरू के कार्यो की तुलना नही की है। बल्कि सिर्फ नीयत की है। कार्य और उसके परिणामों के विषय में नेहरू के साथ गोडसे की तुलना ही बेकार है जैसा आपने कहा है और नीयत के विषय में गोडसे के साथ नेहरू की तुलना बेकार है जैसा मैंने कहा है। आशा है कि आप अपने कथन पर फिर से विचार करेंगे।

(घ). श्री के0जी0बालकृष्ण पिल्लै, गीता भवन, पेरूरकटा, तिरूअन्न्तपुरम् केरल

प्रश्न — ज्ञान तत्व अंक 150 में राइट टू रिकाल पर जो बहस छिड़ी है वह महत्वपूण है।

मेरे ख्याल में जब तक ''राइट टू रिकाल'' का कोई कानून नहीं बनता तब तक मतदाताओं को ''राइट टू प्रपोज'' अवश्य दिया जाना चाहिए। अपने प्रतिनिधियों का नाम प्रस्तावित करने का अधिकार एक एक पंचायत, वार्ड की ग्राम सभा को मिले। इन प्रस्तावित नामों में से बहुमत जिनके पास में हो उन्हीं को प्रत्याशी बना दिया जाए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोकतंत्र में सारा अधिकार लोक का है जिनमें से कुछ हस्तांतरण वह अपने प्रतिनिधियों को कर देता है।

यद्यपि भारत के विभाजन के फलस्वरूप भारतीय मुसलमानों का अलग राष्ट्र पाकिस्तान बना तो हिन्दुओं का कोई अलग राष्ट्र नहीं बना। भारत ने धर्म निरपेक्षता का सिद्धान्त अपनाया तो यहॉ विशेष अधिकार मिला है न्यून पक्ष को अपना पक्ष व्यक्त करें।

उत्तर — गॉधी जी ने अंग्रेजों से भारत छोड़ों का आह्वान करते समय कोई और पूरक विकल्प नहीं दिया था। ऐसा करना हमारे लिए घातक होगा, क्योंकि ऐसा करने से मुख्य मॉग कमजोर हो जायेगी। यदि कोई और संस्था या बैनर ऐसी मॉग उठाये तब तो हम उसका समर्थन कर सकते हैं किन्तु हम अपने बैनर तले इस मॉग को जोड़ना ठीक न ही समझता।

संविधान निर्माताओं ने विशेषाधिकार शब्द को ठीक से नहीं समझा। धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में बहुमत अल्पमत के अधिकारों पर आक्रमण न करने लगे इसके

लिए अल्पमत को कुछ सुरक्षात्मक प्रावधान अलग से दिये जाते हैं। इन्हें विशेषाधिकार कहते हैं। ऐसे प्रावधान सुरक्षात्मक तक सीमित होते हैं। किन्तु भारत में अल्पमत को सुरक्षात्मक विशेषाधिकार न देकर विस्तारात्मक विशेषाधिकार दे दिया गया। यह प्रयास पूरी तरह गलत था। इस प्रयास ने बहुमत के मन में असुरक्षा और अन्याय की भावना पैदा की और अल्पमत की ब्लैकमेलिंग क्षमता को बढ़ाया। आज भी भारत का मुसलमान भारतीय शासन व्यवस्था को सामूहिक वोट के नाम पर ब्लैकमेल कर रहा है। इसके लिए संघ दोषी है या कांग्रेस यह भिन्न विषय है, किन्तु मुसलमानों को हम इसलिए दोषी नहीं कह सकते, क्योंकि यदि दो समान सोच के लोग आपस में टकराते रहे तो तीसरे का लाभ उठाना स्वाभाविक है। कांग्रेस और संघ अपने–अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिए लड़ रहे हैं अल्पमत संगठित वोट के आधार पर लाभ उठा रहा है। आप इसके लिए मुसलमानों को दोष और कांग्रेस को कर्त्तव्य बोध के साथ संघ को भी राजनैतिक स्वार्थ छोड़ने की सलाह दे तो अच्छा होगा।

(च) अपनो से अपनी बात

उन्नीस सौ पचपन में ही मैंने दो हजार पॉच तक भारत की SOCIO POLITICAL (समजराजनैतिक) स्थिति में परिवर्तन की बात कही थी। उन्नीस सौ छियान्नवे के सरकारी व्यवधान के बाद अवधि को बढ़ाकर दो हजार नौ किया गया था ।

अब समीक्षा करने पर स्पष्ट होता है कि मुझे व्यवस्था परिवर्तन में उस सीमा तक सफलता नहीं मिली जैसी मेरी कल्पना थी। यद्यपि मैंने अन्त तक भरपूर प्रयत्न किये और अन्तिम वर्षो में दिल्ली आकर भी रहा। इस सबके बाद भी यह संतोष का विषय है कि SOCIO POLITICAL (समजराजनैतिक) स्थिति में परिवर्तन की आवाजें उठाने में हमें अच्छी सफलता मिली है। सन् दो हजार पांच तक एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलता था जिसे इसकी सफलता पर विश्वास हो। मेरे साथ काम कर रहे साथियों को भी नहीं। आज हम इस स्थिति तक पहुॅच गये हैं कि राज्य और समाज के बीच अधिकारों की समीक्षा की आवाज कई क्षेत्रों में उठने लगी हैं। सर्वाधिक सफल और स्पष्ट प्रयत्न ठाकुरदास जी बंग ने सेवाग्राम से शुरू किया है जो ठीक दिशा में ठीक गति से बढ़ रहा है। गोविन्दाचार्य जी तथा रामबहादुर राय जी के नेतृत्व में संविधान समीक्षा के लिए गंभीर प्रयत्न जारी है। ये प्रयत्न साफ–साफ लोक स्वराज्य की एक सूत्रीय लाइन पर तो नहीं, किन्तु कुल मिलाकर समाज को मजबुत करने में सहायक ही होंगे। हरियाणा प्रदेश में रणवीर शर्मा जी भी लगभग इसी तरह के प्रयत्न कर रहे हैं। साम्यवादियों ने हमारे दो निष्कर्षो में से एक ''राईट टू रिकाल'' का

पूरा–पूरा समर्थन शुरू कर दिया है। कुल मिलाकर यह एक संतोषजनक सफलता है। मैं अपने प्रयत्नों के परिणामों से संतुष्ट हूॅ।

मैंने अपने जीवन में जिस असंभव कार्य को संभव करने में सेंध लगाने तक की सफलता पाई है उसका पूरा–पूरा श्रेय ज्ञान यज्ञ प्रणाली को है, मुझे नहीं। भारतीय संस्कृति में यह दोष रहा है कि उसके प्रमुख विचारक अपने निष्कर्ष आगे की पीढ़ी को सौंपने में बहुत सतर्क होते हैं और प्रायः अपने साथ लेकर चले जाते हैं। मुझे ऐसा लगा कि मैं भी वैसी ही भूल कर रहा हूॅ। मेरा यह कर्तव्य है कि मैं ज्ञान यज्ञ विधि और उसके चमत्कारिक प्रभाव से समाज को अवगत कराऊॅ। इसलिए मैंने अपना सारा समय इस कार्य के निमित्त देना तय किया है। पिछले कुछ दिनों से इस दिशा में ठोस प्रयत्न भी शुरू हुए हैं।

मैं अब भी यह मानता हूॅ कि राज्य की खूनी महत्वाकांक्षा पर नियंत्रण का एकमात्र मार्ग एकसूत्री आन्दोलन ही है जिसमें संसद के अधिकारों में से कुछ अधिकार परिवार, गॉव और जिले को संवैधानिक रूप से देना महत्वपूर्ण है, किन्तु इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि भी तो एक मजबूत समाज ही बना सकता है। दिग्भ्रमित, गुलाम मानसिकता वाले राजनीति में अपनी भूमिका तलाश रहे या राज्याश्रित मनोवृत्ति के लोग ऐसे प्रयत्नों को कमजार कर सकते हैं, मजबूत नहीं। मजबूत समाज बनने के लिए पूरी दुनिया में अब तक केवल एक ही मार्ग दिखता है ''ज्ञान यज्ञ ''। और कहीं भी कोई विधि है ही नहीं। स्वस्थ शरीर के लिए व्यायाम और प्राणायाम विधि बताने वाले तो आपको गली–गली मिल जाएंगे ,किन्तु स्वस्थ चिन्तन के लिए मानसिक व्यायाम की आवश्यकता और विधि के रूप में यह विधि अब तक एकमात्र है। अब तक समाज में समाज को मजबूत करने के नाम पर जो भी बताया जा रहा है वह कहीं न कहीं classको मजबूत करता है और Mass को तोड़ता है जो अन्ततः घातक ही है, जबकि ज्ञान यज्ञ इसके ठीक विपरीत वर्ग निर्माण को कमजोर करता है और सामूहिक भावना को मजबूत। इसलिए कुल मिलाकर ज्ञान यज्ञ दुनिया की सभी समस्याओं के समाधान का मार्ग खोलता है अर्थात् जब तक प्रत्येक व्यक्ति की सोचने की भक्ति जागृत नहीं होगी तथा आत्मवि वास पैदा नहीं होगा तब तक न कोई समस्या सुलझेगी न ही कोई आंदोलन सफल होगा। मैं स्वयं ही अनुभव कर रहा हूॅ कि हमारे जो साथी ज्ञान यज्ञ के साथ रहे हैं या हैं उनमें और अन्य साथियों में जमीन–आसमान का अन्तर है। इसलिए आंदोलन के लिए भी ज्ञानयज्ञ महत्वपूर्ण सिद्ध होगा, व्यक्तिगत पारिवारिक सामाजिक समस्याओं के समाधान में ज्ञानयज्ञ की स्वाभाविक भूमिका है ही।

मै ज्ञान यज्ञ में अपना सारा जीवन लगाऊॅगा इसका यह अर्थ नहीं है कि आन्दोलन में मेरी भूमिका नहीं होगी। वैसे तो इस निमित्त चलने वाले किसी भी आन्दोलन को मेरा समर्थन सहयोग रहेगा ही किन्तु यदि एक सूत्रीय या दो सूत्रीय कोई स्पष्ट आन्दोलन खड़ा करने का प्रयत्न होता है जैसा कि सेवाग्राम से बंग

जी कर भी रहे हैं, तो ऐसे आन्दोलन में मैं किसी भी सीमा तक शामिल होने के लिए वचनवद्ध रहूंगा।

मेरा आपसे निवेदन है कि आप दूसरों से ठगे जाने से स्वयं को बचाने के लिए मानसिक व्यायाम शुरू करें जिसकी सरलतम विधि है ज्ञान यज्ञ और जिसका संगठित स्वरूप है ज्ञान यज्ञ परिवार। इस मानसिक व्यायाम में सहयोग के लिए आप पाक्षिक ज्ञानतत्व की भी सहायता ले सकते हैं। जो भी लोग यह यज्ञ शुरू करेंगे उन्हें ज्ञानतत्व बराबर मिलता रहेगा चाहे वे उसका वार्षिक शुल्क भेंजे या न भेंजे। मुझे उम्मीद है कि आप ज्ञान यज्ञ परिवार के साथ जुड़कर समाज की सभी समस्याओं के समाधान खोजने में अपना योगदान देंगे।